



प्रकाशित: 09 मई 2018 को दैनिक जागरण में प्रकाशित-

## न्यायिक संस्थानों की आजादी और गरिमा की दुहाई, संदिग्ध अतीत वाले आरोपी

### मकखन लाल

कुछ विपक्षी दल पिछले दो-तीन माह से इस प्रचार में जुटे हैं कि मोदी सरकार के शासन में संविधान और न्यायाधीशों की आजादी खतरे में पड़ गई है। सार्वजनिक विमर्श और मीडिया में भी यह मसला छाया हुआ है। विपक्षी दलों से संबद्ध वकील कांग्रेस नेतृत्व के तले लामबंद होकर सरकार और सुप्रीम कोर्ट के जजों के खिलाफ हमलावर हो रहे हैं। इन वकीलों को छोड़ दें तो खुद कांग्रेस अध्यक्ष भी राजनीतिक रूप से प्रेरित जनहित याचिकाओं को लेकर मुख्य न्यायाधीश पर निशाना साध रहे हैं। शीर्ष अदालत की प्रतिष्ठा और सम्मान भाव तार-तार किया जा रहा है। यह पूरा प्रहसन संविधान की रक्षा और न्यायपालिका की प्रतिष्ठा के नाम पर हो रहा है। ऐसे में यह देखना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि जो लोग आज न्यायिक संस्थानों की आजादी और गरिमा की दुहाई दे रहे हैं उन्होंने अतीत में इन्हें कितना नुकसान पहुंचाया? वास्तव में कांग्रेस और कम्युनिस्टों ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता और गरिमा को जितनी क्षति पहुंचाई उसकी मिसाल मिलनी मुश्किल है। इसकी शुरुआत जवाहरलाल नेहरू के दौर से ही हो गई थी। जब तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जस्टिस कानिया के निधन के बाद पद रिक्त हुआ तो नेहरू जस्टिस पतंजलि शास्त्री, जस्टिस मेहरचंद महाजन और जस्टिस बीके मुखर्जी को नजरअंदाज करते हुए जस्टिस एसआर दास को मुख्य न्यायाधीश बनाना चाहते थे। जस्टिस बीपी सिन्हा के अनुसार एक 'अलिखित कानून' ने इसे रोक दिया। इसके बाद भी नेहरू सुप्रीम कोर्ट को प्रभावित करने की कोशिश करते रहे। वह मुख्य न्यायाधीश के पद से पतंजलि शास्त्री की विदाई के बाद इस पद पर एमसी महाजन के दावे की अनदेखी करना चाहते थे। महाजन 1946-47 के दौरान कश्मीर के प्रधानमंत्री रहे थे और कहा जाता है कि नेहरू और महाजन एक दूसरे को फूटी आंख नहीं सुहाते थे। नेहरू बंबई हाईकोर्ट से एमसी छागला को लाना चाहते थे। सुप्रीम कोर्ट के

न्यायाधीशों ने न केवल इसका पुरजोर विरोध किया , बल्कि नेहरू को यह संकेत दे दिया कि अगर महाजन के अतिरिक्त किसी और को मुख्य न्यायाधीश बनाया गया तो फिर उन्हें नए सिरे से सुप्रीम कोर्ट का गठन करना होगा। यह तो बस शुरुआत भर थी।

न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायाधीशों की गरिमा पर वास्तविक आघात का दौर इंदिरा गांधी के शासनकाल में शुरू हुआ। केशवानंद भारती मामले में मुंह की खाने के बाद इंदिरा गांधी ने न केवल सुप्रीम कोर्ट को झुकाने का फैसला किया , बल्कि अपनी पसंद और विचारधारा के लोगों को तैनात कर विद्रोही जजों को सबक सिखाने का भी निश्चय किया। अप्रैल 1973 में केशवानंद भारती मामले में आए फैसले में छह के मुकाबले सात जजों के मत से निर्णय हुआ। मुख्य न्यायाधीश एसएम सीकरी को उसी दिन सेवानिवृत्त होना था। जस्टिस सीकरी के बाद जस्टिस शेलट, जस्टिस हेगड़े और जस्टिस गोवर वरिष्ठता सूची में सबसे ऊपर थे। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के तुरंत बाद 24 अप्रैल को ही बुलाई गई राजनीतिक मामलों की कैबिनेट समिति ने इन तीनों जजों की वरिष्ठता की अनदेखी करते हुए एन रे को मुख्य न्यायाधीश बनाने का निर्णय लिया।

आकाशवाणी से उसी दिन शाम पांच बजे के समाचार बुलेटिन में इसकी घोषणा भी हुई। मुख्य न्यायाधीश एसएम सीकरी और जस्टिस शेलट , हेगड़े और गोवर ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार सरकारी लाइन पर न चलने के कारण इन जजों को दंडित किया गया। रजनी पटेल, कुमारमंगलम, चंद्रजीत यादव और अन्य कांग्रेसी नेता सुप्रीम कोर्ट को सरकार के प्रति समर्पित जजों से भरने की बात कर रहे थे। तत्कालीन विधि मंत्री गोखले ने कुछ वर्ष बाद यह स्वीकार किया कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी , सिद्धार्थ रे और कुमारमंगलम इस फैसले पर अड़े हुए थे। वास्तव में इंदिरा गांधी हेगड़े के मुख्य न्यायाधीश बनने को लेकर डरी हुई थीं , क्योंकि चुनाव याचिका मामले में हेगड़े का फैसला प्रधानमंत्री की मंशा के विपरीत आया था। इंदिरा गांधी के निजी सचिव एनके शेषन के अनुसार प्रधानमंत्री किसी भी तरह हेगड़े से छुटकारा पाना चाहती थीं। दस्तावेजों से भी यह बात सामने आई कि गोखले और कुमारमंगलम ने रे के नाम की सिफारिश इस अनुमान से की थी कि वह उनके अनुकूल साबित होंगे।

आपातकाल के दौरान एचआर खन्ना ने एक बार फिर इंसाफ की अलख जगाई और जबलपुर एडीएम के मामले में असहमति वाला फैसला दिया जो बंदी प्रत्यक्षीकरण के रूप में मशहूर हुआ। यह वही मामला था जिसमें इंदिरा गांधी सरकार ने दलील दी थी कि आपातकाल लागू रहने तक जीवन और स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकार भी निलंबित रहेंगे। पांच न्यायाधीशों की पीठ ने इस मामले की सुनवाई की। जस्टिस खन्ना ने कहा कि किसी भी सूरत में मौलिक अधिकारों और

नागरिकों के जीवन के अधिकारों को निलंबित नहीं किया जा सकता और ऐसा करना संविधान के मूल ढांचे पर प्रहार होगा। जस्टिस खन्ना ने यहां तक कहा कि राज्य के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि वह प्रभावी कानून के बिना किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित कर सके। सभ्य समाज में कानून व्यवस्था उसका मूलभूत तत्व होती है। सेंसर की वजह से अखबारों ने जस्टिस खन्ना के असहमति वाले इस नजरिये को प्रकाशित नहीं किया। पीठ में रे, बेग, चंद्रचूड़ और भगवती के रूप में चार और न्यायाधीश शामिल थे जिन्होंने वही फैसला दिया जो इंदिरा गांधी चाहती थीं। इस तरह यह मामला चार-एक के बहुमत से तय हुआ। इस पर जयप्रकाश नारायण ने अपनी व्यथा सुनाई कि इस फैसले के साथ ही संस्थागत और व्यक्तिगत दोनों रूपों में ही श्रीमती गांधी की तानाशाही को पूर्णता प्राप्त गई। हालांकि बाद में 22 अप्रैल, 1978 को फिक्की के एक सम्मेलन में जस्टिस चंद्रचूड़ ने अपने उस फैसले पर अफसोस जताया कि वह उस वक्त हिम्मत नहीं जुटा पाए।

जस्टिस खन्ना उन सात न्यायाधीशों में से आखिरी जज थे जिन्होंने यह फैसला दिया था कि भले ही संसद किसी भी मूल अधिकार को न्यून करने या संविधान के किसी भी प्रावधान में संशोधन का अधिकार रखती है, लेकिन वह संविधान के मूल ढांचे के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकती। उन सात न्यायाधीशों में जस्टिस एसएम सीकरी फैसले के अगले दिन ही सेवानिवृत्त हो गए, जस्टिस जेएम शेलट, केएस हेगड़े और एएन ग्रोवर ने अपनी वरिष्ठता की अनदेखी कर एएन रे को मुख्य न्यायाधीश बनाने के विरोध में इस्तीफा दे दिया। जस्टिस एके मुखर्जी का सेवाकाल के दौरान ही निधन हो गया और जस्टिस जगनमोहन रेड्डी तय समय पर सेवानिवृत्त हो गए। उन सात जजों में अंतिम जस्टिस खन्ना को इसका खामियाजा भुगतना पड़ा। जस्टिस खन्ना ने 28 जून, 1977 को अपने पद से इस वजह से इस्तीफा दे दिया कि कांग्रेस सरकार ने मुख्य न्यायाधीश पद के लिए उनकी वरिष्ठता को दरकिनार कर दिया। रे पहले ही मुख्य न्यायाधीश बन चुके थे और शेष तीनों को भी उनकी बारी पर यह दायित्व मिला। यह किसी विडंबना से कम नहीं कि ऐसा अतीत रखने वाले आज न्यायपालिका की गरिमा और न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा का रोना रो रहे हैं।

(लेखक इतिहासकार एवं स्तंभकार हैं)